बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 03-03-17

सुधार लाएगी साझेदारी

सुनील मित्तल ने स्पेक्ट्रम समेत बुनियादी ढांचे में साझेदारी की वकालत की है। उनका कहना है कि ऐसा करके दूरसंचार क्षेत्र का मुनाफा और उसकी विश्वसनीयता दोनों बहाल किए जा सकते हैं। मित्तल कहते हैं कि एक नेटवर्क ऑपरेटिंग कंपनी की मदद से स्पेक्ट्रम का साझा स्वामित्व रखा जा सकता है। इसे सभी सेवा प्रदाता लीज पर ले सकते हैं। इससे सेवा प्रदाता विपणन कंपनी में बदल जाएंगे और उनकी बैलेंस शीट दुरुस्त हो सकेगी। यह बात समझदारी भरी है।

खासतौर पर भारतीय बाजार को देखते हुए जहां महंगे स्पेक्ट्रम और रिलायंस जियो द्वारा कीमतों की जंग शुरू करने के बाद मुनाफा जबरदस्त दबाव का शिकार हो गया है। निवेशकों ने दूरसंचार क्षेत्र के शेयरों से दूरी बनानी शुरू कर दी है। विदेशी निवेशकों का रुख भी ठंडा पड़ गया है। वोडाफोन, टेलीनॉर और डोकोमो जैसी विदेशी कंपनियां पहले ही नुकसान उठा चुकी हैं। निकट भविष्य में कारोबारी चक्र में भी किसी सुधार की संभावना नहीं नजर आती। बार्सिलोना में विश्व मोबाइल कांग्रेस में मित्तल ने कहा कि पूंजीगत व्यय बढ़ रहा है जबकि राजस्व में कमी आनी शुरू हो गई है। इसके चलते पूंजी पर प्रतिफल 6.5 फीसदी के निम्न स्तर पर आ गया है। मौजूदा प्रतिस्पर्धी माहौल इसमें और कमी ला सकता है।

संकट से बचने के लिए समूचे दूरसंचार में समावेशन का दौर चल रहा है। रिलायंस कम्युनिकेशंस और एयरसेल पहले ही विलय की घोषणा कर चुके हैं। वोडाफोन और आइडिया सेल्युलर के बीच भी बातचीत चल रही है। जबकि टेलीनॉर ने अपना कारोबार भारती एयरटेल को बेच दिया। ऐसे हालात में सेवा प्रदाताओं के लिए लागत बचाना जरूरी हो चला है। मित्तल का सुझाव इसका ही एक तरीका है। फिलहाल हर सेवा प्रदाता को अपना नेटवर्क तैयार करना पड़ता है। अगर साझा नेटवर्क होगा तो पूंजीगत व्यय में भारी कमी आएगी। उदाहरण के लिए बे स्टेशनों की कम आवश्यकता होगी। फाइबर ऑप्टिक नेटवर्क की बात करें तो अभी भारती एयरटेल, वोडाफोन, बीएसएनएल और रिलायंस जियो ने अपना-अपना अलग केबल डाला है जबकि सरकार भारतनेट के अधीन एक और केबल बिछाना चाहती है।

इसकी वजह से सबका पूंजीगत खर्च बढ़ा है। इसके बजाय अगर सभी सेवा प्रदाता मिलकर एक मजबूत नेटवर्क बनाएं तो बरबादी नहीं होगी। इसी प्रकार स्पेक्ट्रम पूलिंग की भी काफी संभावना है। फिलहाल कुछ नेटवर्क के पास स्पेक्ट्रम खाली पड़ा है जबकि अन्य के पास उसकी कमी है। मित्तल के मुताबिक सेवा प्रदाता एक दूसरे से जरूरत का स्पेक्ट्रम ले सकेंगे। इससे इस दुर्लभ संसाधन का किफायती इस्तेमाल हो सकेगा।

दरअसल दूरसंचार क्षेत्र में निष्क्रिय संसाधनों की पूलिंग का काम पहले भी होता रहा है। समुद्र के नीचे बिछी केबलों का स्वामित्व सेवा प्रदाताओं के एक समूह के पास ही है। दूरसंचार टावरों को भी साझा किया जाता रहा है। वक्त की जरूरत यह है कि अब इसे सक्रिय बुनियादी ढांचे में भी अपनाया जाए। उदाहरण के लिए स्पेक्ट्रम, बेस स्टेशन, फाइबर ऑप्टिक आदि। मित्तल ने यह भी कहा है कि पूरे देश को एक दूरसंचार क्षेत्र में बदल दिया जाए। इस मशविरे में भी काफी दम है। फिलहाल देश 22 क्षेत्रों में विभाजित है। इनमें से प्रत्येक दूरसंचार क्षेत्र के

लिए सेवा प्रदाताओं को अलग टीम रखनी पड़ती है। एक क्षेत्र होने से लागत कम की जा सकेगी। सरकार को इन सुझावों की अनदेखी नहीं करनी चाहिए। दूरसंचार क्षेत्र की बदलावपरक क्षमताओं से हम सभी अवगत हैं लेकिन उसके बावजूद उसके हाल बुरे हैं। देश इस समय डाटा क्रांति के कगार पर है। परंतु कमजोर सेवा प्रदाताओं के साथ वह स्वप्न और साथ ही डिजिटल इंडिया का स्वप्न, दोनों तार्किक परिणति पर नहीं पहुंच पाएंगे। मित्तल की कही बातों पर गौर किया जाए तो इस क्षेत्र की तस्वीर जरूर सुधर सकती है।

Date: 03-03-17

ओडिशा के विकास से निकले सबक

ओडिशा के आर्थिक विकास क्रम पर आधारित एक पुस्तक कई अन्य राज्यों के लिए मार्गदर्शक की भूमिका निभा सकती है। इस संबंध में विस्तार से जानकारी दे रहे हैं अशोक लाहिड़ी

इस समाचार पत्र में बीते दिनों प्रकाशित खबर के मुताबिक ओडिशा की वृद्धि दर देश के 7.94 फीसदी के राष्ट्रीय औसत से बेहतर है। वर्ष 2016-17 में भारत की वृद्धि दर 7.1 फीसदी रही। प्रति व्यक्ति शुद्ध राज्य घरेलू उत्पाद (एनएसडीपी) के मामले में भी ओडिशा की स्थिति में सुधार हुआ है और वह वर्ष 1993-94 से 2002-03 के दूसरे या तीसरे सबसे निचले राज्य के स्तर से बेहतर होकर वर्ष 2003-04 से 2014-15 के दौरान तीसरे-चौथे स्थान पर आ गया। क्या ओडिशा विकास के मार्ग पर अग्रसर है।

हाल ही में प्रकाशित पुस्तक 'द इकनॉमी ऑफ ओडिशा' इस बारे में अहम जानकारी देती है। इस निबंध संग्रह का संपादन अर्थशास्त्र के तीन प्रतिष्ठित प्रोफेसरों ने किया है। पुस्तक परिचय में संपादक बताते हैं कि कैसे वर्ष 2003-04 ओडिशा के विकास संबंधी प्रदर्शन में एक अहम स्थान रखता है। राज्य की सालाना वृद्धि दर जो सन 1981-82 से 2002-03 तक 3.4 फीसदी थी वह 2003-04 से 2012-13 के बीच 7.9 फीसदी के स्तर पर आ गई। इतिहास पर नजर डालें तो पता चलता है कि सन 1950 और 1960 के दशक में जोडा और रायगड में फेरोमैंगनीज के संयंत्र लगे थे। इसके अलावा राजगंजपुर में सीमेंट फैक्टरी, ट्यूब फैक्टरी और चौदर में कागज मिली लगी थी।

इसके अलावा हीराकुड में एल्युमीनियम और केबल फैक्टरी और माचकुंड में पनबिजली परियोजना स्थापित की गई थी। राउरकेला में सबसे बड़ा सरकारी इस्पात संयंत्र है। प्रदेश में हथकरघा और हस्तशिल्प करने वाले भी मौजूद हैं। परंतु पंचायत उद्योग योजना के तहत औद्योगिक सहकारी समितियों को बढ़ावा दिए जाने, उनको तमाम तरह की रियायत दिए जाने, परियोजना रिपोर्ट तैयार करने में मदद, तकनीकी और वित्तीय मदद तथा विपणन आदि में तमाम सहायता दिए जाने के बावजूद इससे संबंधित लघु और मझोले उद्यम विकसित नहीं हो सके। केवल पूंजी आधारित, बड़े उद्यम ही सामने आए जो खनिज क्षेत्र में थे। ओडिशा देश का नौवां सबसे बड़ा राज्य है और आबादी के लिहाज से यह 11वें स्थान पर होने के बावजूद सन 1969-70 में देश के औद्योगिक उत्पादन में इसका योगदान केवल 1.9 फीसदी रहा।

उदारीकरण यानी सन 1991 के बाद राज्य सरकार ने कारोबारियों के लिए सुगम माहौल बनाने का प्रयास किया। उसने रियायती दर पर जमीन दी, बिजली शुल्क में रियायत दी, ब्याज में छूट दी गई और कर रियायत भी दी गई। इसके अलावा उसने श्रम कानूनों में भी बदलाव किया ताकि उद्योग जगत आकर्षित हो। एनएसडीपी में उद्योग जगत की हिस्ेदारी भी सन 1980-81 के 20.2 फीसदी से बढ़कर 1991-2000 में 25.1 फीसदी और 2001-12 के बीच 28.4 फीसदी हो गई। इस अंतर को समझने के लिए गहन अध्ययन और शोध की आवश्यकता है। क्या उद्योग जगत के प्रति सरकार का रुख बदलने से यह बदलाव आया। या बुनियादी ढांचे पर जोर देने से? मसलन धामरा, कीर्तनिया और

गोपालपुर में बने बंदरगाह? या फिर सन 1993 में फ्रेट इक्वलाइजेशन स्कीम की बदौलत? इस योजना के तहत सन 1952 से ही खनिज परिवहन पर सब्सिडी लागू थी। इसने राज्य को बिहार, पश्चिम बंगाल और मध्य प्रदेश के तर्ज पर लाभान्वित नहीं होने दिया। क्या बुनियादी ढांचे की कमी ने औद्योगिक विकास पर असर डाला? सन 1990 के दशक में सड़क निर्माण में कोई खास बढ़ोतरी देखने को नहीं मिली। वहीं रेलवे ट्रैक विस्तार के मामले में प्रदेश देश में नीचे से तीसरे नंबर पर रहा। इस मामले में यह केवल जम्मू कश्मीर तथा हिमाचल प्रदेश से ऊपर था। सन 1990 के दशक में बिजली की अधिकतम कमी 23.9 फीसदी थी जबकि राष्टïंरीय औसत 18.8 फीसदी था। ओडिशा में आर्थिक बदलाव देर से शुरू हुआ। लेकिन वह तेजी से राष्टïंरीय स्तर पर पकड़ बना रहा है। राज्य सकल घरेलू उत्पाद में कृषि की हिस्सेदारी अभी भी ज्यादा है। लेकिन यह सन 1980-81 के 54.6 फीसदी से घटकर 2009-10 में 17.3 फीसदी पर आ गई। यह गिरावट रोजगार में कृषि की हिस्सेदारी में आई कमी से भी तेज है। इसी अवधि में वह 73.3 फीसदी से घटकर 59.3 फीसदी पर आ गई। दिक्कत यह है कि जब इतने सारे लोग कृषि क्षेत्र में रोजगारशुदा हैं तो जीएसडीपी में इसकी कमजोर हिस्सेदारी आगे चलकर समस्या की वजह बनेगी।

ओडिशा के विकास संबंधी हिस्से में कुछ रोचक जानकारी है। इसके मुताबिक देश के अन्य हिस्सों की तुलना में पोषण में ओडिशा बेहतर है जबकि यहां गरीबी अधिक है। इसके लिए राज्य के प्रति व्यक्ति खाद्यान्न उत्पादन को वजह बताया गया है। देश के 147 किग्रा के औसत (पंजाब हरियाणा से इतर) के बरअक्स ओडिशा में यह 174 किलोग्राम है। चावल के उत्पादन ने खासतौर पर पोषण सुनिश्चित करने में मदद की है। इसकी वजह से रोजगार और आय दोनों बेहतर हुए हैं। इसके मुताबिक वर्ष 1993-94 और 2009-10 के बीच प्रति व्यक्ति कैलरी खपत ग्रामीण इलाके में 2199 कैलरी से घटकर 2126 पर आ गई। शहरी क्षेत्र में यह 2261 से घटकर 2096 पर आ गई। इसके लिए प्रति व्यक्ति खाद्यान्न उत्पादन में कमी को जिम्मेदार ठहराया गया जो 2003-04 और 2009-10 के बीच 189 किग्रा से घटकर 183 किग्रा हो गया।

पुस्तक के इस हिस्से में अधिक अन्न उपजाने की सलाह दी गई है। लेकिन यह सही हल नहीं है। असली समस्या खाद्यान्न की मात्रा में नहीं बल्कि उसके घटक में है। प्रदेश में चिकन और मछली के रूप में मांसाहारी भोजन बढ़ रहा है। वर्ष 1993-94 से 2011-12 के बीच बकरे का मांस खाने वालों की संख्या 30 फीसदी से घटकर 15 फीसदी रह गई। वहीं बीफ और भैंसे का मांस खाने वाले 6 फीसदी पर स्थिर रहे। वैसे भी देश में खाद्यान्न की कमी नहीं उसका आधिक्य है। पोषण में कमी और भारतीय खाद्य निगम के पास गेहूं और चावल का आधिक्य बताता है कि समस्या उत्पादन में नहीं बल्कि सरकारी खरीद, भंडारण वितरण और मूल्य निर्धारण नीतियों में है।औद्योगीकरण और औद्योगिकी रोजगार की मदद से प्रदेश में कृषि क्षेत्र में रोजगार कमी की जा सकती है। समस्या का हल भी यही है। उच्च मूल्य वाली फसल का उत्पादन, बेहतर प्रतिफल और उत्पादकता तथा भूमि अधिकारों का बेहतर प्रवर्तन आदि कृषि क्षेत्र के रोजगार में लगे लोगों की स्थिति भी बेहतर करेगा। इन सबके बावजूद विकास की प्रक्रिया में जीएसडीपी में कृषि का योगदान कम होगा। वृद्धि के लाभ के बेहतर वितरण के लिए ओडिशा को औद्योगीकरण करना होगा। इससे औद्योगिक रोजगार सृजित होंगे और लोग कृषि पर कम निर्भर होंगे। ओडिशा पर आधारित पुस्तक के लिए इससे बेहतर समय नहीं हो सकता था। राज्य एक दूसरे से सीखें और विकास को लेकर सार्थक बहस करें इसके लिए जरूरी है कि ऐसी कई और किताबें अलग-अलग राज्यों के बारे में आएं।

दैनिक जागरण

Date: 03-03-17

कैसे बचेगी गंगा की गैया

सरकार ने गंगा की डॉल्फिनों के वजूद पर आ रहे खतरों के मद्देनजर हाल में इस जलजीव की व्यापक गणना कराने का फैसला किया है.

मुमकिन है कि मार्च से यह गणना शुरू हो जाएगी. इस काम में नेशनल मिशन फॉर क्लीन गंगा और देहरादून स्थित वाइल्ड लाइफ इंस्टिट्यूट ऑफ इंडिया जुटेंगे. डॉल्फिनों के साथ ही गंगा में मौजूद घड़ियालों और कछुओं की भी गणना की जाएगी. हालांकि डॉल्फिनों की गिनती पहले भी कराई जा चुकी है, खास तौर से उत्तर प्रदेश में, लेकिन उसमें खामियों का अंदेशा है.

असल में यूपी में पहले की गणना में वर्ष 2012 में 670 डॉल्फिनें गंगा में होने की बात कही थी, जो वर्ष 2015 में कराई गई गणना में 1300 कही गई. विशेषज्ञ मानते हैं कि डॉल्फिनों की तादाद इतनी तेजी से नहीं बढ़ सकती है, इसलिए अब वैज्ञानिक तरीके से गिनती होगी ताकि उनकी संख्या का सटीक अंदाजा लगे और उसके मुताबिक संरक्षण की सही नीतियां बनाई जा सकें.देश में यूपी, बिहार, असम, मध्य प्रदेश, झारखंड और बंगाल में गंगा और उसकी सहायक नदियों में डॉल्फिनें पाई जाती हैं.

इंटरनेशनल यूनियन फॉर कंजरवेशन ऑफ नेचर के मुताबिक यह एक संरक्षित जलजीव है, लेकिन इसके बावजूद इसका अंधाधुंध शिकार होता है, नदियों में प्रदूषण बढ़ने और उन पर बांध बनने से इनकी संख्या घट रही है. इनकी एक विशेषता यह भी बताई जाती है कि ये अल्ट्रासोनिक तरंगों की सहायता से अपना रास्ता खोजती हैं क्योंकि इन्हें दिखाई नहीं देता. पिछले साल तो जल संसाधन मंत्री उमा भारती ने एक आरटीआई के जवाब में यह तक कह दिया था कि गंगा के प्रदूषण की वजह से डॉल्फिनें अंधी हुई हैं.हालांकि जब उनसे इस बारे में वैज्ञानिक सबूत मांगे गए, तो उनके मंत्रालय ने इस दावे के पीछे एक एक्सपर्ट के प्रजेंटेशन को आधार बताकर मामले से पिंड छुड़ाया था.

फिलहाल सच्चाई यही है कि डॉल्फिनें अंधी होती हैं और इसी वजह से उत्तर प्रदेश में स्थानीय भाषा में इन्हें सूंस कहा जाता है. यूपी के कुछ कुछ इलाकों में यह मुहावरा भी प्रचलित है- 'सूंस गंगा की गैया है, गंगा मेरी मैया है.'सूंस यानी सूंघकर अपनी दिशा और भोजन का पता लगाने वाली डॉल्फिनों का गंगा की सेहत से सीधा रिश्ता है.जिस तरह जंगल के जीवन के लिए बाघ (टाइगर) महत्त्वपूर्ण है, उसी तरह भारत के राष्ट्रीय जलीय जीव डॉल्फिन की उपस्थिति नदियों की सेहत का संकेतक है. नदियों के गहरे और साफ पानी में पाए जाने वाली डॉल्फिन गंगा के अलावा असम की ब्रह्मपुत्र नदी में भी पाई जाती है. 1990 से पहले गंगा, चंबल, यमुना या ब्रह्मपुत्र में पाए जाने वाली डॉल्फिनों पर कोई खतरा नहीं था.नब्बे के दशक में ही चीन, कोरिया और जापान में यौनवर्धक दवाओं में डॉल्फिन की चर्बी आदि का इस्तेमाल बढ़ने लगा था.

डॉल्फिन को मार कर उनकी चर्बी निकाली जाने लगी और उनकी खाल को उबाल कर उसका तेल निकाला जाने लगा था. इस तेल के बारे में नीम-हकीमों ने दावा करना शुरू किया कि इसकी मालिश से शरीर की त्वचा मुलायम और कांतिवान बनती है. एक डॉल्फिन से औसतन चार-

पांच किलो तक चर्बी मिल जाती है. भारत में इसकी औसत कीमत ढाई से तीन हजार रु पये प्रति किलोग्राम होती है, चीन में जिसकी कीमत 30-40 हजार प्रति किलोग्राम से भी ज्यादा हो जाती है.शिकारी इसी मुनाफे के लालच में गंगा, चंबल और ब्रह्मपुत्र की डॉल्फिनों का अवैध ढंग से शिकार करते रहे हैं. चूंकि अपने देश में जलीय जलजीवों की सुरक्षा का प्राय: कोई इंतजाम नहीं है और यह काम स्थानीय लोगों की निगरानी पर ही छोड़ा गया है, लिहाजा अवैध शिकार के कारण डॉल्फिनों की संख्या पहले तो काफी तेजी से गिरी और फिर रासायनिक कचरे के कारण उनका समूचा जीवन ही दांव पर लग गया. कुछ वजहें और हैं, नए बनाए गए बांधों और बैराजों की वजह से मॉनसून सीजन को छोड़कर गंगा में पानी अभूतपूर्व रूप से घट गया है- इसका असर डॉल्फिनों पर पड़ा है.ध्यान रहे कि डॉल्फिन और अन्य जलजीवों की उपस्थिति से ही हम गंगा और पर्यावरण सुरक्षा के प्रति आस्त हो सकते हैं. डॉल्फिन को बचाने की कोशिश का मकसद गंगा, उसके जलजीवों और अंतत: इसके किनारे रहने वाले लाखों-करोड़ों मनुष्यों का जीवन बचाना है. इस कार्य में सरकार और जनता, दोनों को मनोयोग से जुटाना चाहिए.

The Indian EXPRESS
JOURNALISM OF COURAGE

Date: 02-03-17

Black Band, Red Card

By threatening government over arrest of their colleague, IAS officers in Bihar set a disturbing example.

IAS officers in Bihar are on the warpath over the arrest of a senior member of their fraternity. Sudhir Kumar, the chairman of the Bihar Staff Selection Commission (BSSC), was arrested by a special investigation team of the Patna police recently in connection with the leak of questions and answers concerning a competitive examination. Last week, the IAS Officers Association decided to wear black arm bands to work to protest what they say was police highhandedness and threatened that no official would take up the post of Kumar, who is under suspension following the arrest. They have promised to continue the protest until Kumar is released from the jail and the case is transferred to the CBI. The IAS body also declared that hereafter verbal orders from ministers, including the chief minister, will not be obeyed.The concern among bureaucrats for a fellow officer is touching — but entirely misplaced. Kumar has been accused of alleged irregularities and favours to his relatives by helping them access the question paper. Certainly, IAS officers have a right to defend a colleague and talk about his "unblemished record in service so far," but they are expected to know the meaning of due process and the rule of law. That's why the protest sends out a disturbing message. It has the trappings of a power elite threatening the political executive for not protecting their privileges. The government has done well not to bow to their pressure. Nearly 17.5 lakh candidates were to take the BSSC exam, which the government was forced to cancel following the leak of papers. It is important that the people behind the paper leak are traced and booked. Chief Minister Nitish Kumar has said the SIT will be given a free hand to investigate and an example will be made of the investigation. There is no reason to fault the CM unless there is evidence to suggest otherwise in the police investigation. If the IAS officers want to be taken seriously, they should stand up for a fair probe. Instead, they have revealed a clannish intent to safeguard one among them at the expense of dispensing with the credibility of the executive.The veiled threat the IAS body holds out is that officials can slow down the administration; Nitish Kumar's success as an administrator had a lot to do with the synergy and trust he had built with bureaucrats. This case seems to have breached that trust and while the government must ensure that due process is followed in this case, the officers need to step back and let the law take its course.

जनसत्ता

Date: 02-03-17

विकास की बुनियाद

चालू वित्त वर्ष की तीसरी तिमाही के आंकड़ों से सरकार ने स्वाभाविक ही राहत की सांस ली है। इस तिमाही के बीच में ही नोटबंदी का फैसला किया गया था, इसलिए माना जा रहा था कि उसका अर्थव्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। मगर तीसरी तिमाही के आंकड़ों से जाहिर हुआ है कि नोटबंदी से कारोबार पर कोई खास असर नहीं हुआ। दूसरी तिमाही में विकास दर 7.4 फीसद थी और तीसरी में यह सात फीसद दर्ज की गई। यानी नोटबंदी का बहुत मामूली असर पड़ा। अगली तिमाही की विकास दर का अनुमान भी 7.1 फीसद लगाया गया है। तीसरी तिमाही में प्रति व्यक्ति शुद्ध राष्ट्रीय आय में इजाफा दर्ज हुआ। जाहिर है, इन आंकड़ों से नोटबंदी का विरोध करने वालों के खिलाफ सरकार को जवाब देने का पुख्ता आधार मिल गया है। मगर नोटबंदी के बाद जिस तरह करीब दो महीने लोगों को परेशानियां झेलनी पड़ीं और छोटे कारोबारियों के कामकाज पर प्रतिकूल असर पड़ा, उसके मद्देनजर तीसरी तिमाही के आंकड़ों को कुछ लोग स्वाभाविक ही शक की नजर से देख रहे हैं।

नवंबर और दिसंबर के महीनों में नगदी की किल्लत की वजह से न सिर्फ खुदरा बाजार में कारोबार घटा, बल्कि मोटर वाहनों की खरीद और जमीन-जायदाद के कारोबार में भी भारी गिरावट देखी गई। तैयार रिहाइशी कॉलोनियों में भवनों के दाम काफी नीचे आ गए, फिर भी खरीदारों में उत्साह नहीं दिखा। इसकी वजह से बैंकों के कर्ज पर बुरा असर पड़ा। इस दौरान निजी कर्ज लेने वालों की संख्या तो घटी ही, वाहन और आवास कर्ज के रूप में भी बैंकों का कारोबार कमजोर रहा। औद्योगिक उत्पादन में भी लगातार कमी देखी गई। सभी बड़े औद्योगिक समूहों ने माना कि नगद लेन-देन बाधित होने की वजह से उनके उत्पादन पर असर पड़ा है। नोटबंदी के शुरुआती दिनों में बैंकों में नगदी न होने की वजह से रोजमर्रा के खर्चे भी बाधित हुए थे, बहुत सारी श्रमशक्ति पुराने नोट बदलने में जाया हो गई थी। तब सरकार ने डिजिटल भुगतान को बढ़ावा देने का रास्ता अख्तियार किया था। मगर उससे सामान्य लोगों को कोई लाभ नहीं मिल पाया। इन तथ्यों के बावजूद अगर नोटबंदी वाले दौर में विकास दर में बहुत मामूली गिरावट दर्ज हुई, तो इस पर हैरानी स्वाभाविक है।

इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि नोटबंदी की चौतरफा आलोचना को रोकने के लिए सरकार हर प्रयास करती रही है। ऐसे में तीसरी तिमाही के आंकड़े नोटबंदी के बुरे प्रभावों का खंडन करने वाले आए हैं, तो इसकी गणना को लेकर संदेह किया जा रहा है। महंगाई के आकलन में जिस तरह सिर्फ थोक खरीद के आधार पर आंकड़ा पेश कर बताया जाता रहा है कि महंगाई घटी या बढ़ी, उसी तरह विकास दर के आकलन में कोई फार्मूला अपनाया गया हो, तो उसे अर्थव्यवस्था की सेहत के लिए उचित नहीं कहा जा सकता। सरकार का लक्ष्य विकास दर को आठ फीसद तक पहुंचाने का है, इसलिए तीसरी तिमाही के आंकड़े उसके लिए उत्साहजनक हो सकते हैं, पर अर्थव्यवस्था की हकीकत को जानते हुए इस दिशा में व्यावहारिक उपायों पर ध्यान देने की दरकार से इनकार नहीं किया जा सकता। सरकार प्रत्यक्ष विदेशी निवेश पर लगातार जोर देती आ रही है, पर हकीकत यह है कि इस दिशा में उसे अपेक्षित कामयाबी नहीं मिल पाई है। इसकी एक वजह विदेशी निवेशकों का अर्थव्यवस्था पर भरोसा न जम पाना भी रहा है।

Live हिन्दुस्तान .com

Date: 02-03-17

बेंगलुरु की बेलंदूर झील सभी शहरों के लिए सबक

यह शायद भारत में ही हुआ, जब एक बड़े से तालाब से पहले लपटें उठीं और फिर घना धुआं। बदबू, धुएं से हैरान-परेशान लोग समझ नहीं पा रहे थे कि यह अजूबा है या प्राकृतिक त्रासदी? दैवीय घटना है या वैज्ञानिक प्रक्रिया? पता चला कि कभी समाज को जीवन देने वाले तालाब के नैसर्गिक ढांचे से की गई छेड़छाड़ और उसमें बेपनाह जहर मिलाने से नाराज तालाब ने ही इन चिनगारियों के **जरिये** समाज को चेताया है। यह हुआ 16 फरवरी को, बेहतरीन मौसम के लिए **मशहूर** बेंगलुरु में। इससे पहले 2015 में भी यह झील कई बार सुलग चुकी है।बीती 16 फरवरी की शाम पांच बजे यहां की बेलंदूर झील की सतह से पहले लपटें उठीं और बाद में धुएं की गहरी भूरी-बदबूदार परत ने पूरे इलाके को ढक लिया। इसका असर कई किलोमीटर तक रहा, जिससे लोगों को सांस लेने में परेशानी हुई, यातायात **प्रभावित** हुआ। हालात सामान्य होने में कई घंटे लग गए। पता चला कि झील के तट को नगर निगम ने कूड़ाघर में तब्दील कर रखा है। उस दिन उसी कूड़ाघर में आग लगा दी गई थी, जिसकी लपटों से झील पर बिछी रसायन की परत ने आग पकड़ ली। दरअसल देश के सबसे खूबसूरत महानगर कहे जाने वाले बेंगलुरु की फिजा अब बदल चुकी है। यहां भीषण गरमी पड़ने लगी है और थोड़ी सी बारिश में जल-प्लावन जैसी **स्थिति** आ जाती है।नब्बे साल पहले बेंगलुरु शहर में 2,789 केरे यानी झीलें हुआ करती थीं। सन साठ आते-आते मात्र 230 रह गईं। 1985 में शहर में 34 तालाब थे और अब यह संख्या 30 तक सिमट गई है। जल निधियों की बेरहम उपेक्षा का ही परिणाम है कि न केवल इस शहर का मौसम बदला, बल्कि लोग पानी को भी तरस रहे हैं। सेंटर फॉर कंजर्वेसन, **एनवायर्नमेंटल** मैनेजमेंट ऐंड पॉलिसी रिसर्च इंस्टीट्यूट की रिपोर्ट भी दहलाने वाली है। एक अन्य शोध में चेताया गया है कि शहर के अधिकांश तालाबों के पानी की पीएच वैल्यू बहुत ज्यादा है, यानी वे अम्लीय हो चुके हैं।बिसरा दी गई बेलंदूर झील शहर के दक्षिण-पूर्व में स्थित है और आज भी यहां की सबसे बड़ी झील है। इसमें आग अचानक नहीं लगी। इससे पहले 26 अप्रैल, 2015 को वर्तुर झील में भी कई-कई फुट ऊंचे सफेद झाग के जंगल खड़े हो गए थे। जानलेवा बदबू और उसके पानी से शरीर पर छाले पड़ने का नजारा घंटों तक देखा गया था। जब हंगामा हुआ, तो **जिम्मेदार** महकमों ने एक-दूसरे के ऊपर दोषारोपण करके अपना पल्ला झाड़ लिया था। मई में भी पानी से धुआं उठने और चिनगारी जैसी कई घटनाएं सामने आई थीं।पारिस्थितिकी विज्ञान केंद्र के **पर्यावरण** वैज्ञानिक प्रोफेसर वी रामचंद्र के नेतृत्व में शोध के बाद जो निष्कर्ष निकला, वह **चौंकाने** वाला था। पाया गया कि औद्योगिक इकाइयों में बनने वाले डिटर्जेंट में फॉस्फोरस की मौजूदगी होती है, जिससे फैक्टरियों से निष्कासित प्रवाह के जरिये पानी पर फोम का निर्माण होता है, जो आग का कारण बनता है। वर्तुर झील के शोध में निकला कि इन झीलों का पानी सिंचाई और घरेलू उपयोग के अनुकूल तो नहीं ही है, इनसे भू-जल दूषित होने के भी आसार पैदा हो गए हैं। शोध में कई खतरों की ओर इशारा किया गया था। यह तो सामने आ चुका है कि बेलंदूर में आग लगने का कारण इलाके के कारखानों और गैराज से बहे डीजल, पेट्रोल, ग्रीस, डिटर्जेंट और जल-मल हैं और मीथेन की परत के जल के ऊपरी स्तर पर बढ़ जाने से आग लगी।बेलंदूर तो एक बानगी है। बेंगलुरु शहर में बस डिपो से लेकर स्टेडियम तक और फ्लाई ओवर से लेकर बड़ी कॉलोनियां तक उन जगहों पर बसी हैं, जहां चार दशक पहले तक उफनते तालाब थे। अब शहर में जरा सी बारिश में सड़कें तालाब बन जाती हैं। रहे-बचे तालाब उफनकर अपने में समाई गंदगी-बदबू को बाहर फेंकने लगते हैं। बेलंदूर की घटना बेंगलुरु ही नहीं, तेजी से विकसित हो रहे तमाम शहरों के लिए एक चेतावनी हैं कि यदि अब भी तालाबों के अतिक्रमण व उनमें गंदगी घोलने का काम बंद न किया गया, तो आज दिख रही छोटी सी चिनगारी कभी भी ज्वाला बन सकती है, जिसमें जल-संकट, **बीमारियां**, पर्यावरण असंतुलन की लपटें होंगी। दुर्भाग्य है कि तमाम चेतावनियों के बावजूद चीजें अभी बदल नहीं रही हैं।